इकाई 11 राज्य का अर्थ और प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देष्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 राज्य और उसके उद्‌भव (Derivations)
11.3 राज्य का अर्थ और परिभाषा
  11.3.1 राज्य के तत्त्व
  11.3.2 राज्य व अन्य संस्थाओं के बीच भेद
  11.3.3 क्या यह भेद वास्तविक है?
11.4 राज्य की प्रकृति : विभिन्न सिद्धांत
  11.4.1 उदारवादी सिद्धांत
  11.4.2 मार्क्सवादी सिद्धांत
  11.4.3 गाँधीवादी सिद्धांत
11.5 सारांष
11.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें
11.7 बोध प्रष्नों के उत्तर

11.0 उद्देष्य

इस इकाई में आप पायेंगे सभी मानव संस्थाओं में सर्वोपरि, यानी राज्य, जो कि राजनीति-विज्ञान का मुख्य संबद्ध विषय है। 'राज्य' शब्द के प्रयोगों में इतनी ज़्यादा विविधता है कि यह भ्रम पैदा करता है। इस प्रकार, जैसे राष्ट्र, देष, समाज व सरकार जैसे राज्य के पर्यायों की तुलना में राज्य के मूल लक्षणों एवं सिद्धांतों पर प्रकाष डालने का प्रयास किया जाता है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि :

- राज्य शब्द के अर्थ व उद्‌भव को समझ सकें और उसके मूल लक्षण जान सकें;
- राज्य का उसके विभिन्न पर्यायों से भेद कर सकें; और
- राज्य की प्रकृति के विषय में प्रमुख सैद्धान्तिक ढाँचे को समझ सकें।

11.1 प्रस्तावना

जैसा कि पहले ज़िक्र किया गया, राजनीति-विज्ञान का अध्ययन करने के तरीकों में से एक है राज्य का उसके सभी विविध विष्वरूपों में अध्ययन करना। परन्तु राज्य शब्द को अक्सर अंधाधुंध रूप से किसी सामान्य प्रवृत्ति अथवा किसी आदमी के स्वास्थ्य की, उसके मानस की अथवा उसकी आर्थिक स्थिति की ''अवस्था'' जैसी किसी जानकारी को व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया जाता रहा है। राजनीति-विज्ञान में भी, इसको विभिन्न अल्पान्तरों के साथ प्रयोग किया गया है; सरकार, संस्था अथवा उसकी अवयव इकाइयों के एक पर्याय रूप में। अतः, राज्य क्या 'है', यह प्रगति में सहायता करता है अथवा उसे रोकता है, कितने अधिकार राज्य के पास होने चाहिए और मानवीय कार्यकलाप के किन क्षेत्रों में, यह अन्य विद्यमान संस्थाओं से किस प्रकार भिन्न है और राज्य की प्रकृति के विषय में सही-सही व्याख्या क्या है?

प्राचीन एथेन्स के समय से ही ये प्रष्न राजनीति दार्षनिकों का दिलचस्प विषय रहे हैं; तथापि, राजनीति-सिद्धांत से संबंधित आधारभूत कारणों को खोज निकालने के सचेत प्रयास प्राचीन यूनानियों के साथ, पष्चिमी दुनिया में शुरू हुए। इस प्रकार, इस अवधारणा को इस शास्त्र-विद्या के एक मूल विषय के रूप में समझना लाज़मी हो जाता है।

11.2 राज्य और उसके उद्‌भव (Derivations)

जैसा कि कहा गया है, राजनीति-विज्ञान का एक पहलू है राज्य के साथ क्रिया-व्यापार, जो कि सभी मानव संस्थाओं में सर्वोपरि है। यूनानियों ने 'पॉलि' (polis) शब्द का प्रयोग किया जिसके अनुसार शहर-राज्य (city-state) अंग्रेजी शब्द 'सिविता' (civitas) के सबसे ज़्यादा करीब से मेल खाता है, जिसका भी अर्थ 'जन कल्याण' के द्योतन के साथ यही है। जर्मनों ने 'स्टेटस' (states) शब्द का प्रयोग किया जो कि उक्त शब्द-पद का भाग मात्र है। आधुनिक शब्द 'स्टेट' (state) जर्मनों द्वारा पूर्व-प्रयुक्त ''स्टेटस'' (status) से ही निकला है। राजनीति-विज्ञान में ''स्टेट'' (यथा राज्य) शब्द सर्वप्रथम निकोलो मैकाइवली द्वारा प्रयोग किया गया। इस प्रकार, यह स्पष्ट हो गया कि राज्य शब्द सोलहवीं शताब्दी से पहले बहुत अधिक प्रचलित नहीं था। मध्यकालीन यूरोप के एक बड़े हिस्से में रहने वाले लोग आधुनिक राज्य की परिकल्पना से अनभिज्ञ थे। आगे चलकर यह शब्द प्रसिद्ध हो गया और उसने प्राधिकार संबंधी एक पक्षपातषून्य अर्थ ग्रहण कर लिया।

11.3 राज्य का अर्थ और परिभाषा

चूँकि राज्य राजनीति-विज्ञान के अध्ययन में एक महत्त्वपूर्ण संघटक है, 'राज्य' शब्द का क्या तात्पर्य है संबंधी एक स्पष्ट जानकारी आवष्यक है। सामाजिक जीवन के आरम्भ से ही मानव जाति किसी न किसी प्रकार के प्राधिकरण के अधीन रही है। यह प्राधिकरण अपनी प्रकृति में बदलता रहा है और अपना काम संगठन के विभिन्न रूपों के माध्यम से करता रहा है। राजनीतिक जीवन की ठोस अभिव्यक्ति में इन भेदों के तले प्रयोजन की एक व्यावहारिक पहचान देखी जा सकती है; और अनावष्यक तत्त्वों एवं उन परिवर्तनों की उपेक्षा करके जो समय, स्थान व परिस्थितियों की माँग की वजह से होते हैं, हम अन्य संगठनों से भिन्न, राज्य का नितान्त सार पा सकते हैं।

पारिभाषिक शब्दावली के निमित्त विचार से, अब हम यह पूछ सकते हैं कि राज्य है क्या? राज्य की परिभाषाएँ, जैसा कि जर्मन लेखक शुल्ज़ ने कहा, असंख्य हैं। स्वभावतः ये परिभाषाएँ उनके लेखकों के मतों से रंजित हैं और उस दृष्टिकोण से प्रभावित हैं, जिससे राज्य को समझा जाता है। समाजवादीजन इसे एक सामाजिक दृष्यघटना मानते हैं, जबकि विधिवेत्ताजन राज्य को एक कानूनी संस्था के रूप में आदर देते हैं; अन्तरराष्ट्रीय कानून विषयक लेखकगण कुछ निष्चित तत्त्वों पर ज़ोर देते हैं, जिनको राजनीति-वैज्ञानिक अनदेखा करते हैं, और अन्ततः दार्शनिक लेखकगण अपनी परिभाषाओं को दुर्बोध शब्दों में प्रतिपादित करते हैं। तथापि, हमें यह याद रखना चाहिए कि राज्य एक गूढ़ संकल्पना भी है और एक ठोस संगठन भी, यथा भौतिक तत्त्वों से पहचाना जाने वाला। इस प्रकार, सभी भावों में, राज्य का अर्थ निम्नलिखित लिया जा सकता है :

i) व्यक्तियों का एक संगठन, यथा एक संगठित इकाई के रूप में देखी जाने वाली मानव जाति;

ii) एक निष्चित क्षेत्र के राजनीतिक रूप से संगठित लोग;

iii) सार्वजनिक कानून का एक संगठन जो कि किसी समूह अथवा अधिवासी-समुदाय (population) के विरुद्ध हिंसा-प्रयोग पर एकाधिकार का पक्षपाती हो;

iv) एक संगठन जो आंतरिक मामलों में अपना कार्य संस्थाओं के एक एकीकृत समूह, जिसे सरकार कहते हैं, के माध्यम से करता है।

11.3.1 राज्य के तत्त्व

राज्य, जैसा कि पहले कहा गया, एक ठोस वस्तु के रूप में भी देखा जा सकता है और एक गूढ़ विचार के रूप में भी। एक ठोस वस्तु का मतलब है कि यह एक विषिष्ट मानव-समूह अथवा संस्था है और गूढ़ अर्थ में देखे जाने पर यह एक विधिगत विषिष्टता रखने वाला निगम है। राज्य, इसी कारण, भौतिक और पराभौतिक अथवा आध्यात्मिक, दोनों तत्त्वों से मिलकर बनता है। ये तत्त्व हैं :

i) एक मानव-समूह, यथा अधिवासी-समूह (जनसंख्या)

ii) एक क्षेत्र जहाँ पर वे स्थायी रूप से निवास करते हैं (राज्यक्षेत्र)

iii) आन्तरिक प्रभुसत्ता एवं बाह्य नियंत्रण से स्वतंत्रता (सम्प्रभुता)

iv) एक राजनीतिक संगठन अथवा एजेंसी जिसके माध्यम से अधिवासी-समूह की सामूहिक इच्छा व्यक्त की जाती है, यथा शासन-प्रणाली (सरकार)

राजनीति-विज्ञान के छात्रों को, इस प्रकार, यह समझना चाहिए कि इन तत्त्वों में से किसी एक का भी अभाव राज्य को अकृत कर देता है; सभी को अवष्य ही एक साथ होना चाहिए। राज्य जनता नहीं होता, न ही देष, न ही सरकार, अपितु ये सब होता है और इसके अतिरिक्त, राज्य में वह एकता ज़रूर होनी चाहिए जो उसे एक विषिष्ट एवं स्वाधीन राजनीतिक सत्ता बनाती है। ये लक्षण सभी राज्यों के लिए सर्वमान्य हैं, उनकी ऐतिहासिक रूप से विषिष्ट अभिव्यक्तियाँ जो चाहे हों। उदाहरण के लिए, यह बात यूनानी शहर राज्यों, मध्यकालीन राज्यों, आधुनिक राजतंत्र एवं राज्यों के उन सभी प्रकारों पर लागू होती हैं जो आज विद्यमान हैं– उदारवादी लोकतंत्र, फ़ौजी तानाषाही एवं साम्यवादी शासन। अतः चार तत्त्वों की यह व्याख्या सभी राज्यों के लिए एक जैसी है; यह, हालाँकि राज्य के सामाजिक-राजनीतिक अर्थ पर स्पष्ट रूप पर प्रकाष नहीं डालती।

11.3.2 राज्य व अन्य संस्थाओं के बीच भेद

आम आदमी राज्य और अन्य कई संस्थाओं, जैसे समाज, राष्ट्र व अन्य, के बीच कोई भेद नहीं करता। परन्तु, राज्य का विधिज्ञ दृष्टिकोण, जो यह कहता है कि राज्य एक कानून-निर्मात्री सत्ता है, राज्य व अन्य संस्थाओं के बीच भेद करता है।

राज्य और समाज के बीच भेद नितान्त आवष्यक है क्योंकि समाज राज्य से कहीं अधिक बड़ा होता है। एक समाज में, सभी सामाजिक संस्थाएँ व सामाजिक संबंध शामिल होते हैं, जबकि राज्य के तहत समाज का मात्र एक पहलू आता है। राजनीतिक विषयक अनेक आदर्षवादी एवं अद्वैतात्मक (monistic) लेखकों ने समाज व राज्य के बीच कोई भेद नहीं किया है। परन्तु, उदारवादी लेखक इस प्रकार का भेद करते हैं और दावा करते हैं कि राज्य समाज का सेवक है और समाज के ही भीतर होता है; कि समाज राज्य से अधिक पुराना है और राज्य की भाँति चार तत्त्व नहीं रखता; राज्य एक उच्च रूप से संगठित संप्रभुतासम्पन्न संस्था है, जबकि समाज असंगठित भी हो सकता है और प्रभुसत्तासम्पन्न नहीं होता; राज्य कोई जन्मजात संस्था नहीं होता, जबकि समाज होता है। बहुवादियों ने राज्य व समाज के बीच भेद की हमेषा महत्त्व दिया है, क्योंकि वे राज्य को महज एक संस्था के रूप में ही मानते हैं, समाज के विषिष्ट हितों को साधने के लिए समाज की अन्य संस्थाओं के समान ही।

सरकार राज्य के अवयवों में से एक होती है, परन्तु ये दो शब्द, राज्य व सरकार, एक-दूसरे के लिए अंधाधुंध रूप से प्रयोग किए जाते रहे हैं। लेकिन वस्तुतः, सरकार राज्य का एक एजेंसी मात्र है जिसके माध्यम से सामूहिक इच्छा को प्रतिपादित किया जाता है, अभिव्यक्त किया जाता है और कार्यान्वित किया जाता है। स्थिरता, संप्रभुता एवं विस्तीर्णता के लिहाज से, राज्य सरकार की बजाय ये सब चीजें रखता है। यह भी ग़ौर करना ज़रूरी है कि राज्य को अभी हाल ही में विकसित हुई संस्था माना जाता है, जबकि सरकार बहुत पुरानी है। यहाँ तक कि सबसे पुरातन मानव समाजों ने भी सरकार का कोई प्रारंभिक रूप विकसित किया होगा ताकि समुदाय के आम जीवन पर नियंत्रण रखा जा सके। इसी कारण, सरकार राज्य के अस्तित्व हेतु एक आवष्यक शर्त तो है, परन्तु यथेष्ट (sufficient) नहीं।

बहुवादीजन राज्य व समाज की अन्य संस्थाओं के बीच कोई भेद नहीं करते और दृढ़तापूर्वक यह कहते हैं कि राज्य समाज की किसी भी अन्य संस्था की तरह ही है। परन्तु, आमतौर पर, राज्य अपनी संप्रभुता के कारण अन्य सामाजिक संस्थाओं से भिन्न होता है। हर उदारवादी लोकतंत्र में, राज्य संप्रभुता के भौतिक यंत्र जैसे पुलिस, सेना, नौकरशाही और जेल अधिक मज़बूत हो गए हैं। आज, एक प्रभुसत्तासम्पन्न राज्य के पास अत्यधिक भौतिक सत्ता होती है, ताकि विद्रोहों को कुचला जा सके, जो कि अन्य संस्थाओं के पास नहीं होती।

राज्य और राष्ट्र/नागरिकताओं के बीच भेद एक बड़े विवाद का विषय रहा है क्योंकि आधुनिक राज्य राष्ट्र-राज्य भी हैं। परन्तु राजनीति-विज्ञान के छात्रों को राज्य और राष्ट्र के बीच मुख्य अन्तर समझना चाहिए, जो कि यह है कि राष्ट्र का आधार मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक एकता है जबकि राज्य का आधार भौतिक एवं राजनीतिक एकता है। राष्ट्र पूँजीवाद के विकास के साथ उभरे, जबकि राज्य उसके पहले से ही विद्यमान था। राज्य के अनिवार्य तत्त्व राष्ट्र की पूर्व-षर्तें नहीं हैं।

11.3.3 क्या यह भेद वास्तविक है?

राज्य का विधिज्ञ दृष्टिकोण एक विधिसंगत अवधारणा के रूप में राज्य एवं अन्य सामाजिक संस्थाओं के बीच भेद करता है। परन्तु कल्याणकारी राज्यों के उद्‌गमन के साथ ही, राज्य व समाज के बीच अंतर लुप्तप्राय हो गया; राज्य व सरकार के बीच भेद महज एक तकनीकी भेद है और सरकार, सभी व्यावहारिक उद्देष्यों से, राज्य के समकक्ष ही है। इसी प्रकार, राष्ट्र-राज्य के उदय के साथ ही, राष्ट्र व राज्य के बीच अंतर कोई ज़्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं रहे और राज्य व अन्य संस्थाओं के बीच मतभेद बहुवादियों द्वारा धो डाले गए।

राज्य की गतिविधियों को अवष्य ही समग्र समाज के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। राज्य को उस सम्पूर्ण राजनीतिक तंत्र के रूप में लिया जाना चाहिए, जो कि जनसंख्या, निष्चित क्षेत्र, सरकार व संप्रभुता रखने वाली पूर्ण स्थायी वैध संस्थाओं में कुछ निष्चित प्रकार्यों, गतिविधियों व प्रक्रियाओं के निष्पादनार्थ समाज में प्रचलित हो। कानून बनाने की सर्वोच्च सत्ता एक राजनीतिक प्रणाली है जो स्थिरता व संतुलन कायम रखने, नीति-निर्माण करने एवं समाज में आम कल्याणकारी कार्यों को करने संबंधी प्रकार्यों को निष्पादित करती है।

बोध प्रष्न 1

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों के सुझावों के लिये इकाई का अंत देखें।

1) राज्य शब्द से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) राज्य व अन्य संस्थाओं के बीच अंतर बताएँ। क्या यह भेद वास्तविक है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.4 राज्य की प्रकृति : विभिन्न सिद्धांत

राज्य की अनेक दृष्टिकोणों से कल्पना की गई है। हर सिद्धान्ती राज्य को अपनी ही शास्त्र-विद्या के शब्दों में समझता और परिभाषित करता है। हर एक ने राज्य की उत्पत्ति, प्रकृति, क्षेत्र, प्रकार्य व उद्देष्यों के संबंध में अपना ही सिद्धांत दिया है। ये सिद्धांत प्रायः रूप और अर्थ में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। इस इकाई में राज्य की प्रकृति के विषय में हम विभिन्न सिद्धांतों से दो-चार होने का प्रयास करेंगे।

11.4.1 उदारवादी सिद्धांत

राज्य की उत्पत्ति एवं प्रकृति संबंधी उदारवादी सिद्धांत की जाँच-पड़ताल करने से पहले, कुछ जानकारी स्वयं उदारवाद के ही विषय में प्राप्त करना ठीक रहेगा। 16वीं और 17वीं शताब्दियों में नए पूँजीवादी वर्ग (मध्यवर्ग) का उदय हुआ, उदारवाद की धारणा उन प्रतिक्रियात्मक बलों के खिलाफ़ एक प्रगामी (progressive) विद्रोह के रूप में सामने आयी जिनका प्रतिनिधित्व सामन्तवाद, चर्च और राजतंत्र करते थे। यह व्यक्ति के अधिकारों व स्वतंत्रता पर आधारित लोगों की सहमति संबंधी मान्यता हेतु एक आवाज़ थी। व्यक्ति-संबंधी इसकी अवधारणा 'पुरोगामी व्यक्ति' (posessive individual) की अवधारणा थी और यह लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना हेतु एक राजनीतिक आन्दोलन था।

यह सिद्धांत मनुष्य की उदारवादी धारणा पर आधारित है जो अपने स्वयं की स्वतंत्र इच्छा रखने वाले, इस संसार में एक स्वतंत्र अभिकर्त्ता रूपी संबंध है, वह व्यक्तियों, उनके स्वभाव, गतिविधियों, रुचियों एवं उद्देष्यों को आपेक्षित भूमिका दिलवाता है। राज्य को एक आवष्यकता, एक संस्था –□बुरी हो या भली –□के रूप में देखा जाता है, जो समाज में कानून व व्यवस्था, शान्ति व न्याय कायम कर सके। राज्य समग्र समाज के आम हित को साधने के लिए होता है। इसको मानव-कल्याण की एजेंसी के रूप में देखा गया है, जोकि व्यक्ति के जीवन और संपत्ति को सुरक्षित करेगा। इसको मनुष्य के नैतिक और सामाजिक विकास में योगकारी माना जाता है। उदारवाद राज्य ओर समाज के बीच भेद करता है और कहता है कि राज्य समाज के लिए है, न कि समाज राज्य के लिए।

राज्य के प्रकार्यों पर उदारवादी दृष्टिकोण समय-समय पर बदलते रहे हैं। 17वीं शताब्दी के दौरान, पूँजीवादी वर्ग – जिसने उदारवाद का समर्थन किया– की आवश्यकताएं भिन्न थीं और 18वीं, 19वीं व 20वीं शताब्दियों के दौरान, इस वर्ग की आवष्यकताएँ बदलीं, जिससे समाज में राज्य की एक भिन्न भूमिका आवष्यक हो गई। 18वीं एवं आरम्भिक 19वीं शताब्दी का सैद्धान्तिक उदारवाद, जो अल्पतम प्रकार्यों वाले नकारी राज्य का समर्थन करता था, 19वीं सदी के उत्तरार्ध एवं आरम्भिक 20वीं सदी में आधुनिक उदारवाद में बदल गया जिसने कल्याणकारी प्रकार्यों वाले सकारी (positive) राज्य का समर्थन किया।

सैद्धान्तिक उदारवाद को अन्य नामों से भी जाना जाता है, यथा 'लेज़-फ़ै' (liassez-faire) अथवा पुलिस राज्य सिद्धांत, अथवा व्यक्तिवाद सिद्धांत जो राज्य को एक आवष्यक बुराई मानता है। आवष्यक, मनुष्य के स्वार्थपरक स्वभाव के कारण और बुरा, क्योंकि यह स्वार्थपरक स्वतंत्रता का शत्रु है। राज्य और वैयक्तिक स्वतंत्रता को एक-दूसरे के विपरीत के रूप में देखा जाता है और सैद्धान्तिक उदारवाद व्यक्ति की गतिविधियों के क्षेत्र को बढ़ाकर और राज्य की गतिविधियों के क्षेत्र को घटाकर उसको अधिक स्वतंत्रता प्रदान करता है। राज्य का कार्य है व्यक्ति को भौतिक सुरक्षा प्रदान करना ताकि वह राज्य हस्तक्षेप के बिना अपने व्यक्तित्व को विकसित कर सके। संक्षिप्ततः, इसका अर्थ है अल्पतम राज्य प्रकार्य एवं अधिकतम वैयक्तिक स्वतंत्रता। ऐडम स्मिथ ने एक आर्थिक आधार पर इसका समर्थन किया और बैन्थम ने एक नैतिक और राजनैतिक आधार पर। तदोपरांत उदारवाद अथवा आधुनिक उदारवाद को 'कल्याणकारी राज्य का सिद्धांत' 'संषोधनवादी (Revisionist)' अथवा 'सुधारवादी (Reformist) उदारवाद' भी कहा जाने लगा। यहाँ, राज्य को महज एक आवष्यक बुराई नहीं समझा जाता, बल्कि यह भी माना जाता है कि राज्य सामाजिक कल्याण के अनेक कार्य कर सकता है, सन्तुलन ला सकता है और जनसाधारण की सामाजिक-आर्थिक माँगों को पूरा कर सकता है। अनेक विचारकों मिल, फ्रीमैन, हॉब्हाउस, लिण्डसे, कीन्स, टॉनी, कोल, बार्कर, लास्की एवं मैकाइवर ने राज्य के सकारी कार्यों संबंधी सिद्धांत दिया।

इस प्रकार, उदारवादी राज्य के बढ़ते लोकतंत्रीकरण ने सभी वयस्कों को मताधिकार दिलवाकर राज्य को अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप की नीतियाँ शुरू करने के लिए मज़बूर कर दिया। इसका अर्थ कराधान एवं राज्यीय अनुदान के माध्यम से सम्पन्नतरों से अल्पसम्पन्नों को संसाधन हस्तांतरित करना भी है। अल्पतम राज्य से भिन्न, जो उदारवादी राज्य का मूल स्वरूप था, कल्याणकारी राज्य से अपील की गई कि जनकल्याण को अपना मुख्य कार्य-व्यापार बनाये। कल्याणकारी राज्य महज एक चुनावी दबाव का जवाब नहीं था, बल्कि आम जनता के बीच उनकी शक्ति संबंधी चेतना जगाने हेतु प्रत्युत्तर भी था, जो मज़दूर संघों जैसी संस्थाओं एवं जनमत के माध्यम से व्यक्त हुआ। परन्तु कल्याणकारी राज्य को सैद्धान्तिक अल्पतम राज्य से एक क्रांतिक परिवर्तन के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। इसकी बजाय, हमें इसको जनता को अधिकतम रियायत जाने के एक प्रयास के रूप में देखना चाहिए जो कि एक उदारवादी, पूँजीवादी बाज़ार अर्थव्यवस्था की आवष्यकताओं के अनुरूप हो।

उदारवाद, 20वीं सदी के अंतिम वर्षों में, नव-उदारवाद के एक नए रूप में बदल चुका है। इसको सैद्धान्तिक राजनीतिक अर्थव्यवस्था के विचारों की ओर लौटने के रूप में लिया जा सकता है। नव-उदारवादी लक्ष्य है 'राज्य की सीमाओं की ओर वापसी', संक्षेप में कि अनियमित पण्य (market) पूँजीवाद से दक्षता, वृद्धि और व्यापक सम्पन्नता आयेगी। राज्य का नव-उदारवादी दृष्टिकोण फ्रेड्रिक हयेक एवं मिल्टन फ्रीडमैन जैसे अर्थषास्त्रियों तथा रॉबर्ट नोज़िक जैसे दार्षनिकों के लेखों में देखा जाता है।

बोध प्रश्न 2

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों के सुझावों के लिये इकाई का अंत देखें।

1) राज्य के उदारवादी सिद्धांत संबंधी विषिष्ट लक्षण क्या है.?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) सैद्धान्तिक उदारवादी सिद्धांत क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.4.2 मार्क्सवादी सिद्धांत

राज्य का मार्क्सवादी सिद्धांत राज्य के उदारवादी सिद्धांत की एक समीक्षा, और उसके एक विकल्प के रूप में उभरा। यदि उदारवाद कामगार वर्ग का एक सामाजिक-आर्थिक एवं राजनैतिक सिद्धांत था, तो मार्क्सवाद स्वयं पूँजीवाद आर्थिक व्यवस्था का परिणाम था।

उदारवादी दृष्टिकोण से, राज्य सामाजिक अनुबंध, स्वीकृति एवं सर्वसम्मति का परिणाम है, और कानून व्यवस्था कायम करके एवं न्याय व कल्याणकारी सेवाएँ मुहैया करके समग्र समुदाय का आम हित साधने के लिए है। जबकि मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार, राज्य वर्ग-विभाजन एवं वर्ग-संघर्ष का परिणाम है और एक वर्ग-विषेष का ही हित साधता है, क्योंकि सभी वर्गों का कोई एक ही हित/सर्वमान्य हित नहीं हो सकता। यह राज्य को अस्वीकार करता है, अपनी अल्पावष्यकता वर्गों की विद्यमानता से जोड़ता है, और सुझाव देता है कि एक क्रांति और एक वर्गरहित समाज की स्थापना द्वारा राज्य की संस्था को नष्टकर दिया जाए। आपको पता होना चाहिए कि सामाजिक विज्ञानों में, ''मतैक्य मॉडल'' और ''विवाद मॉडल'' से संबंधित बहस एक लम्बे समय तक गर्म रही। मतैक्य मॉडल जिस पर उदारवाद आधारित है, दृढ़तापूर्वक कहता है कि समाज व सामाजिक संस्थाओं, राज्य समेत, का आधार सहयोगी (shared) आस्थाएँ, हित, आदर्ष एवं संस्थाएँ हैं। विवाद सिद्धांत विवाद व संघर्ष को महत्त्व देता है और यह निष्कर्ष निकालता है कि राज्य व अन्य कई संस्थाएँ विवाद का ही परिणाम हैं।

चलिए, राज्य की प्रकृति, प्रकार्य एवं विधिसंगत के विषय में मार्क्सवादी मान्यताओं का ध्यानपूर्वक विष्लेषण करते हैं, जिनको कार्ल मार्क्स ने 'दास-कैपिटल' व 'द क्रिटिक ऑफ

द गोथा प्रोग्राम' समेत अपनी अनेक कृतियों के माध्यम से तैयार किया। यद्यपि मार्क्स ने स्वयं राज्य का अलग से कोई सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया, राज्य-संबंधी विचार-विमर्ष मार्क्स के लगभग सभी लेखों में बिखरा पड़ा है। मार्क्स उत्पादन के पूँजीवादी ढंग संबंधी ऐतिहासिक विष्लेषण में व्यक्त थे, अतः वह राज्य सरीखे विषिष्ट विषयों पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर सके। परन्तु एन्जेल्स व अन्य मार्क्सवादी विद्वानों व क्रांतिकारियों ने इस पहलू पर लिखा है।

राज्य-संबंधी मार्क्सवादी सिद्धांत की मुख्य बातों पर राजनीति-विज्ञान के छात्रों का ध्यान आवष्यक है। मार्क्स ने अपने आरम्भिक लेखों में यह स्पष्ट किया कि एक वर्ग की संगठित शक्ति है जो बहुसंख्यक कामगार वर्ग पर प्रबल राजनीतिक प्रभुत्व-स्थापन नियमों के माध्यम से दूसरे को, यथा आर्थिक रूप से प्रबल अल्पसंख्यक वर्ग को दबाती है। मार्क्स ने राज्य को एक संक्रमित और पराश्रयी सामाजिक बल माना और 'पृथ्वी पर ईष्वर का प्रयाण' (March) के रूप में राज्य संबंधी हेगेल की धारणा को अस्वीकार किया। उन्होंने राज्य को कभी भी समाज में विवाद समाप्त करने वाले और एकता व सामन्जस्य लाने वाले किसी ऊँची नैतिकता के रूप में नहीं लिया। राज्य उनके अनुसार, कभी न तो समाज के बराबर था न ही उससे ऊपर, वरन् ऐतिहासिक विकास की किसी निष्चित अवस्था में महज उसका परिणाम था। इस प्रकार, मार्क्स एक आम सैद्धान्तिक ढाँचे में और इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या में विष्वास करते हैं जिसे 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' (Dialectical Materialism) कहते हैं। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद एक अधिक सामान्य सैद्धान्तिक तंत्र है, जिससे ऐतिहासिक विकास संबंधी अधिक स्पष्ट सिद्धांत जन्मा है, जिसको 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' (Historical Materialism) अथवा इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या कहते हैं।

मार्क्सवादी कहते हैं कि सभी दृष्यघटनाएँ, जिनका हम अपने मस्तिष्क एवं चेतना से बाहर अनुभव करते हैं, भौतिक, साकार और यथार्थ होती हैं। साथ ही, सभी दृष्य घटनाएँ विवादों की ओर ले जाते और फिर, अन्ततः विकास के एक ऊँचे स्तर की ओर उठते आन्तरिक प्रतिवादों से अभिलक्षित होते हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को मार्क्स द्वारा 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' नाम दिया गया है। इसी कारण, किसी भी दृष्य घटना को समझने के लिए हमें उस तरीके को अवष्य समझना चाहिए जिसमें वह बदलती है।

इस प्रकार, राज्य-संबंधी मार्क्सवादी सिद्धांत राज्य को महिमान्वित नहीं करता; यह एक वर्ग-रहित समाज में, उसके पतन, उसके तिरस्कार का सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार, नीतियाँ और राज्य उस अधिरचना (super structure) का हिस्सा हैं जो एक प्रदत्त समाज की आर्थिक व्यवस्था अथवा उत्पादन रीति पर आधारित है। राज्य की उत्पत्ति संबंधी मार्क्सवादी सिद्धांत भी राज्य व नीतियों के इस आम दृष्टिकोण पर आधारित है।

राज्य वर्गों में विभाजित समाज और उनके बीच संघर्षारंभ के साथ जन्मा। राज्य की उत्पत्ति संबंधी ऐतिहासिक विष्लेषण यह है कि राज्य किसी भी सूरत में समाज पर थोंपी गई कोई सत्ता नहीं है; बल्कि, यह विकास की एक निष्चित अवस्था में समाज की एक रचना है जो उसके साथ विवादों में फँसा होता है। राज्य, इस प्रकार, समाज में वर्गों के जन्म और वर्ग-संघर्ष के साथ जन्मा और एक प्रभावी वर्ग के हाथों में एक शोषण-साधन मात्र है। राज्य की मदद से, शासक वर्ग आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों पर अपनी सत्ता कायम रखते हैं।

बोध प्रष्न 3

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों के सुझावों के लिये इकाई का अंत देखें।

1) राज्य-संबंधी मार्क्सवादी सिद्धांत को अपने शब्दों में स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.4.3 गाँधीवादी सिद्धांत

चलिए, अब यह देखने का प्रयास करते हैं गाँधीजी ने राज्य की प्रकृति को किस प्रकार परिकल्पित किया। इसकी सूक्ष्म रूप से जाँच करने से पहले, हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि गाँधीवादी परिकल्पना उदारवादी व मार्क्सवादी पहलुओं में पायी जाने वाली राज्य-संबंधी अवधारणा के साथ समानताएँ व भिन्नताएँ दर्षाती है। हम यह भी ग़ौर कर सकते हैं कि यद्यपि यह राज्य विषयक भारतीय विचारधारा से जन्मी है, यह इस विषय पर कुछ पाष्चात्य विचारों का भी प्रभाव दर्षाती है।

सबसे पहले, गाँधीजी राज्य की आवष्यकता को स्वीकार करते हैं; यद्यपि अहिंसा के एक समर्थक के रूप में वह यह ज़रूर देखते हैं कि राज्य का निहितार्थ है हिंसा-प्रयोग अथवा अवपीड़न। ऐसा इसलिए है कि गाँधीजी इस विचार को मानते हैं कि मनुष्य स्वभावतः अहिंसात्मक है और कि यह आदर्ष अर्थ में मनुष्य पर लागू होता है। एक यथार्थवादी दृष्टिकोण से, वह इस बात से सहमत हैं कि राज्य की कुछ आवष्यकताएं होती हैं क्योंकि व्यवहारतः, मनुष्य में अहिंसा और सामाजिकता संबंधी आदर्ष गुण नहीं भी हो सकते। परन्तु यह बात कहकर, गाँधीजी यह भी बात रखते हैं कि हिंसा की एक संस्था के रूप में राज्य सीमित अवष्य होना चाहिए। अन्य शब्दों में, गाँधी जी अल्पतम राज्य को मानते हैं।

दूसरे, गाँधीजी का सुझाव है कि राज्य कुछ कसौटियों के आधार पर सीमित होना चाहिए। एक ओर, राज्य का प्राधिकार सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर आधारित किसी व्यवस्था द्वारा घटा दिया जाना चाहिए, जिसमें राज्य से नीचे स्तर के समुदायों के पास ज़्यादा स्वायत्तता और केन्द्रीय राज्य से स्वतंत्रता होनी चाहिए। इस प्रकार की स्वायत्तता संबंधी एक इकाई ग्राम समुदाय होनी चाहिए। उस समुदाय को स्वयं एक सर्वसम्मति की प्रक्रिया द्वारा ग्रामीण समुदाय को प्रभावित करने वाले सभी निर्णयों को तय करना चाहिए। गाँधीवादी दृष्टिकोण यह है कि जहाँ तक कि महत्वपूर्ण स्थानीय समुदाय संबंधी निर्णय उस स्तर पर लिए जाते हैं, केन्द्रीय राज्य अल्पतम होगा, जो समग्र अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत सम्पूर्ण क्षेत्र की रक्षा, विदेष-संबंध एवं समग्र राज्यक्षेत्र को प्रभावित करने वाली कोई भी अन्य समस्याएँ से अनुमानतः सम्बद्ध रहेगा। रीति-रिवाजों व परम्पराओं के माध्यम से समग्र समाज में निहित नैतिक मानदण्डों द्वारा गाँधीवादी विचार में राज्य की शक्ति भी अल्पकृत होती है।

तीसरे, और केवल अहिंसात्मक रूप से, राज्य वैयक्तिक ''सद्विवेक'' (Conscience) अथवा ''अन्तर्आत्मा की आवाज़'' से उठती नैतिक चुनौतियों द्वारा भी परिसीमित है। अपनी महान् श्रेण्य कृति, *हिन्द स्वराज*, में उन्होंने कहा कि इस तरह की राज व्यवस्था जिसमें राजनीतिक शक्तियों को एक बड़ी संख्या में स्व-षासन ग्राम समुदायों में विभाजित कर दिया जाता है, स्वराज शासन प्रणाली है। गाँधीजी का दावा था कि यह भारत में सदियों

में चलकर विकसित हुई एक ईमानदारी से भारतीय राजनीतिक व्यवस्था है। तथापि, गाँधीवादी राज्य को उसकी आर्थिक व सामाजिक व्यवस्थाओं से विलग नहीं किया जा सकता। इसी कारण, स्वराज अथवा स्व-षासन संबंधी संकल्पना आर्थिक व सामाजिक व्यवस्थाओं को छूती है। स्वयं ग्रामीण समुदाय के भीतर, गाँधीजी व्यक्तियों से ऊपर समूहों के महत्त्व पर ज़ोर देते हैं।

इस प्रकार, गाँधीजी को एक अराजकतावादी कहना ग़लत होगा, यदि उससे तात्पर्य एक ऐसे विचारक से है जोकि राज्य की आवष्यकता से इंकार करता हो। निष्चिततः, वह राज्य को परिसीमित करते हैं, परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि वह इससे छूट देते हैं। अल्पतम राज्य का मामला यह है कि इसमें अल्पतम हिंसा शामिल है, और इसका अर्थ स्वराज-संबंधी गाँधीवादी राजनीतिक सिद्धांत की स्वीकृति भी है। जबकि वैयक्तिक सद्विवेक पर गाँधीवादी राजनीतिक सिद्धांत की स्वीकृति भी है। जबकि वैयक्तिक सद्विवेक पर गाँधीजी का ज़ोर वैयक्तिक अधिकारों पर उदारवादी महत्त्व दिए जाने जैसा ही है, इसको वैयक्तिक अधिकार की धारणा से अलग समझा जाना चाहिए। गाँधीवादी अधिकार व्यक्ति को व्यक्तिवाद के उदारवादी आधार पर नहीं, बल्कि नैतिक आधार पर दिए जाते हैं; यथा यह दावा कि नैतिक रूप से कार्य करना हमारा कर्त्तव्य है। सत्याग्रह-संबंधी गाँधीवादी धारणा अथवा विरोध-प्रदर्षन संबंधी राजनीतिक कार्यवाही अथवा असत्य का विरोध एक नैतिक अधिकार एक कर्त्तव्य है, और गाँधीवादी राज्य भी इस प्रकार की कार्यवाही का उद्देष्य है।

गाँधीजी की राज्य-संबंधी अवधारणा मार्क्सवादी राज्य से इस संदर्भ में मिलती-जुलती है कि दोनों ही राज्य को एक हिंसा-तंत्र के रूप में लेते हैं। अपने नैतिक पहलू के मद्देनज़र, गाँधी भी कर्त्तव्यों पर ज़ोर देते हैं, न कि अधिकारों पर। इसके अलावा गाँधीवादी राज्य वैयक्तिक इच्छाओं की सामूहिकता संबंधी किसी धारणा की बजाय एक नैतिक, साम्यवादी मतैक्य पर ज़्यादा आधारित है। अनेक तरीकों से, गाँधीवाद राज्य राज्य का एक विषिष्ट रूप से भारतीय रूप है। आज, गाँधीवादी तत्त्व पंचायतीराज अथवा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण संबंधी आदर्षों की धारणा में प्रतिबिम्बित होते हैं। वस्तुतः भारतीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण मुद्दों में से एक यह रहा है कि राज्य का गांधीवादी स्वरूप भारत में प्रस्तावित किया जा सकता है? यदि हाँ, तो किस हद तक?

राज्य-संबंधी इन तीन पहलुओं का संक्षेपण करते हुए, हम कह सकते हैं कि उदारवादी राज्य वैयक्तिक अधिकारों पर आधारित होता है; कि मार्क्सवादियों के अनुसार, राज्य वर्ग-प्रभुत्व व वर्ग-षोषण पर आधारित होता है; और गाँधीवादी राज्य एक नैतिक व साम्यवादी सर्वसम्मति पर आधारित होता है।

बोध प्रष्न 4

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों के सुझावों के लिये इकाई का अंत देखें।

1) राज्य के गाँधीवादी सिद्धांत संबंधी विषिष्ट लक्षणों को विस्तार से बताएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

2) राज्य के गाँधीवादी सिद्धांत के साथ उदारवादी अथवा मार्क्सवादी सिद्धांत की तुलना करें और उसके बाद भेद दर्षायें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.5 सारांष

अब तक, ऊपर राज्य-संबंधी विभिन्न धारणाओं का विष्लेषण किया गया, जो यह निष्चित करती हैं कि राज्य एक ऐतिहासिक सत्ता है। इसका अर्थ, प्रकृति, प्रकार्य व कार्यक्षेत्र समय व परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ बदले हैं। तथापि, एक स्थिति तय है कि चूँकि समाज विविध समूहों, हितों व विवादों का समूह है, राज्य समग्र समाज के आम हितों के उन्नयन (promotion) और अभिव्यक्ति हेतु एक मंच बना हुआ है।

राजनीति को सामाजिक प्रक्रियाओं के एक आयाम के रूप में समझा जाना चाहिए, न कि महज राज्य और सरकार संबंधी अध्ययन के रूप में। उदारवादी दृष्टिकोण से, राज्य महज प्रभुत्व सम्पन्न कानून-निर्मात्री शक्तियाँ। कानूनों को लागू करने हेतु अवपीड़क शक्ति रखने वाली कोई कानूनी संस्था नहीं है, बल्कि इसका सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है समाज की सेवा करना और समाज में अधिक से अधिक लोगों की अधिक से अधिक माँगों को पूरा करना। जबकि मार्क्सवाद ने राज्य की वर्ग प्रवृत्ति पर ज़ोर दिया, उसने यह दृढ़तापूर्वक कहा कि समाज का आधार नींव का ढाँचा होता है – यथा, उत्पादन रीति समाज में वर्ग निर्धारित करती है – और इसी पर आधारित है समाज की सांस्कृतिक, नैतिक व राजनीतिक अधिरचना। यह, उनके अनुसार, एक अवपीड़क साधन है जो समाज के एक विषिष्ट प्रभावषाली आर्थिक वर्ग से ताल्लुक रहता है। दूसरी ओर, गाँधीवादी राज्य लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के आदर्षों के साथ, एक नैतिक व साम्यवादी सर्वसम्मति पर आधारित है।

इन सभी विभिन्न पहलुओं में, राज्य की आवष्यकता बेहद महसूस की जाती है। राज्य को चाहे एक वर्ग-संगठन के रूप में देखा जाए अथवा एक सत्ता-तंत्र के रूप में, या फिर एक आवष्यक या अनावष्यक बुराई के रूप में, अथवा कल्याणकारी राज्य के रूप में, अथवा जीवन के नितांत आधार के रूप में, वह अपनी ऐतिहासिक विकास के विभिन्न चरणों के दौरान अपना उद्देष्य पूरा करता है।

11.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

असिरवथ्म, एड्डी, *पॉलिटिकॅल थिअरी*, दी अपर इण्डिया पब्लिषिंग हाउस प्रा. लिमिटेड, लखनऊ, 1984

जैन, एम.पी., *पॉलिटिकॅल थिअरी : लिबरल एण्ड मार्क्सियन*, ऑथरज़ गिल्ड पब्लिकेषन्ज़, नई दिल्ली, 1979

मैकाइवर, आर.एम., *द माडर्न स्टेट*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, लंदन, 1976

रे, अमल एवं मोहित भट्टाचार्य, *पॉलिटिकॅल थिअरी : आइडियाज़ एण्ड इन्स्टिट्यूषन्ज़*, वर्ल्ड प्रैस, कोलकाता, 1985 (नया संस्करण देखा जा सकता है)

11.7 बोध प्रष्नों के उत्तर

बोध प्रष्न 1

1) देखें भाग 11.2, 11.3 और उपभाग 11.3.1

2) देखें उपभाग 11.3.2 और 11.3.3

बोध प्रष्न 2

1) देखें उपभाग 11.4.1

2) देखें उपभाग 11.4.1

बोध प्रष्न 3

1) देखें उपभाग 11.4.2

बोध प्रष्न 4

1) देखें उपभाग 11.4.3

2) देखें उपभाग 11.4.3